॥ श्रीः ॥

॥ श्रीपरांकुशपरकालयतिवरवरवरमुनिभ्यो नमः ॥

॥ श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः ॥

श्रीकूरेश विजय

प्रकाशक : श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर मठ
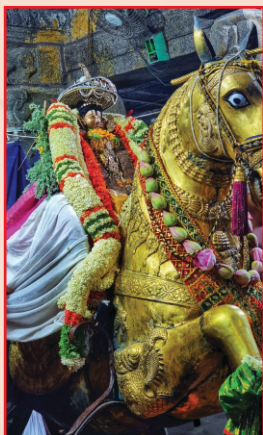
श्रीरामानुज स्वामीजी एवं श्रीकूरेश स्वामीजी, भूतपूरी

श्रीकूरेश विजय लीला

श्रीरामानुज स्वामीजी की अवतार स्थली भूतपुरी में १० दिवसीय तिरुनक्षत्र उत्सव के अन्तर्गत ६ वें दिन श्रीरामानुज स्वामीजी सफ़ेद वस्त्र धारण (त्रिदण्ड लिए बिना) करके अश्व वाहन में विराजमान होते है और श्रीकूरेश स्वामीजी काषाय वस्त्र सहित त्रिदण्ड धारण करके दर्शन देते है।

कृमिकण्ठ राजा के दरबार में श्रीकूरेश स्वामीजी ने भगवान के परतत्व का प्रतिपादन किया उसी लीला का इस उत्सव में अनुभव किया जाता है। श्रीकूरेश विजय का अनुसन्धान भी होता है।

श्रीकूरेश स्वामीजी का मंगल हो।
श्रीरामानुज स्वामीजी का मंगल हो।

श्रीकूरेश स्वामीजी एवं श्रीपराशर भट्टर स्वामीजी, श्रीरंगम

मकरे हस्त नक्षत्रे सर्वनेत्रांश संभवम् ।
श्रीमत्कुर कुलाधीशं श्रीवत्साकंमहं भजे ।।
श्रीवत्सचिन्ह मिश्रेभ्यो: नम उक्ति मधीमहे ।
यदुक्तयस्त्रयी कण्ठे यान्ति मंगलसूत्रताम् ।।

अवतार मास : मकर
अवतार नक्षत्र : हस्ता
अवतार स्थल : कूरम
परमपद स्थल : श्रीरंगम
आचार्य : श्रीरामानुज स्वामीजी
शिष्य : श्रीरंगामृत कवि
रचना : प्रार्थना पंचकम, अति मानुष स्तवम्, श्रीवैकुण्ठ स्तवम्, सुन्दरबाहु स्तवम्, वरदराज स्तवम्, श्रीस्तवम्, योनित्यमचुत..., लक्ष्मीनाथ ... तनियन ।

आचार्य के प्रति शिष्य की निष्ठा का वर्णन श्रीकूरेश स्वामीजी के जीवन चरित्र से देख सकते है। जिन्होंने अपने आचार्य की सेवा के लिए नेत्रों को त्याग दिया, अपना राज दरबार त्याग दिया, संसार को त्यागकर परमपद के लिए प्रस्थान किया ।

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर मठ

श्रीअनंताचार्य प्रकाशन माला

द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

1) श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर मठ 'गुरुपरम्परा'
2) श्रीरामानुज वैभव
3) श्रीरामानुज नूत्तन्दादि
4) उपदेश रत्नमाला
5) यतिराज वैभवम्
6) चरमोपाय निर्णयम्
7) श्रीरामानुज स्तोत्ररत्नावली
8) बहत्तर वाक्य
9) तिरुप्पावै
10) भगवद्विषयसार
11) श्रीप्रपन्नामृत
12) गद्य त्रय
13) श्रीरामानुज सहस्रनामावली
14) रहस्यार्थ सर्वस्वम्
15) श्रीगोदा चरित्र एवं श्रीरामानुज भक्ति चालीसा
16) श्रीवेंकटेश स्तोत्ररत्नावली
17) श्रीवादिभीकरार्य सूक्तिमालिका
18) श्रीवरवरमुनि स्तोत्ररत्नावली
19) स्तोत्ररत्न एवं चतु:श्लोकी
20) श्रीवैष्णव भजन माला
21) श्रीधनुर्मास स्तोत्ररत्नावली
22) शरणागति मीमांसा
23) अंतिमोपाय निष्ठा
24) यतीन्द्र प्रवण प्रभाव
25) श्रीकूरेश विजय

ग्रंथ प्राप्त करने हेतु संपर्क :
shriprativadibhayankar@gmail.com
मोबा. 09403727927

।। श्री:।।

।। श्रीपरांकुशपरकालयतिवरवरवरमुनिभ्यो नमः।।
।। श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः ।।

श्रीकूरेश विजय

मूलग्रंथ
श्रीकूरेश स्वामीजी

हिन्दी व्याख्या
अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य उभय वेदान्ताचार्य
श्रीशैल अनन्त पूरूष १००८ श्रीमत् यादवाद्रि विद्वान अक्कारक्कनि
सम्पतकुमाराचार्य स्वामीजी महाराज

प्रकाशक : श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर मठ

।। श्रीमते रामानुजाय नम: ।।

ग्रंथ प्राप्ति स्थान

१) श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर मठ, कांचीपुरम् ☎ : ०४४-२७२६८७१८
२) श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर मठ, तिरुमला ☎ : ०८७७-२२७७८८९
३) श्री वेंकटेश देवस्थान, फणसवाडी-मुम्बई ☎ : ०२२-२२०८४६२८

ग्रंथ प्राप्त करने हेतु संपर्क :
shriprativadibhayankar@gmail.com
मोबा. 09403727927

प्रकाशक : श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर मठ
गादी स्वामी तिरुमालिगै,
31/13, सन्निधि स्ट्रीट,
कांचीपुरम् - 631 501, (तमिळनाडु)
मोबा. 09364324844, 04427268718

विशेष सहयोग : श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर मठ शिष्यास् ट्रस्ट

प्रथम संस्करण : संवत् 1983, सन 1926
द्वितिय संस्करण : संवत् 2004, सन 1947
तृतिय संस्करण : संवत् 2030, सन 1973
चतुर्थ संस्करण : श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर सिंहासनाधीश्वर
श्री श्रीनिवासाचार्य स्वामीजी का 91 वाँ
तिरुनक्षत्र महोत्सव
सिंह मास विशाखा नक्षत्र,
भाद्रपद शुक्ल 6, संवत् 2079
दिनांक 02-09-2022

मुद्रक : कलासंगम प्रिंटर्स, इचलकरंजी

सेवा : रु. 50/-

।। श्रीरुक्मणीसत्यभामासमेतवेणुगोपालपरब्रह्मणेनम: ।।

।। श्रीरुक्मणी श्रीसत्यभामा समेत श्रीवेणुगोपाल भगवान।।

श्रीशठकोप स्वामीजी

श्रीरामानुज स्वामीजी

श्रीवरवरमुनि स्वामीजी

श्रीप्रतिवादि भयंकर अण्णा स्वामीजी

।। श्रीवादिभीकरमहागुरवे नम:।।

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य
उभय वेदांताचार्य जगद्गुरु श्री श्री १००८
श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर सिंहासनाधीश्वर
श्रीमत्कृष्णमाचार्य स्वामीजी महाराज
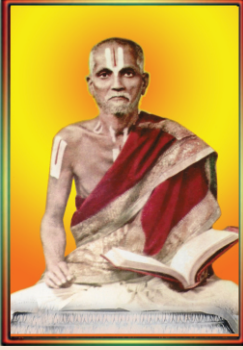
अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य
उभय वेदांताचार्य जगद्गुरु श्री श्री १००८
श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर सिंहासनाधीश्वर
श्री अनंताचार्य स्वामीजी महाराज
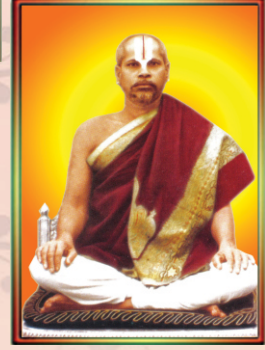
अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य
उभय वेदांताचार्य जगद्गुरु श्री श्री १००८
श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर सिंहासनाधीश्वर
श्रीमत्कृष्णमाचार्य स्वामीजी महाराज

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य
उभय वेदांताचार्य जगद्गुरु श्री श्री १००८
श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर सिंहासनाधीश्वर
श्री श्रीनिवासाचार्य स्वामीजी महाराज
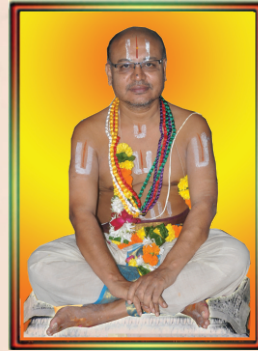
अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य
उभय वेदांताचार्य श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर
श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज
(श्रीबालक स्वामीजी)

31/13, Varadaraj Temple Street, Kanchipuram-631501 (tamilnadu)
Ph : 044-27268718, M : 09364324844 • E-mail : kcm.pbananth@gmail.com

अनन्य प्रपन्न श्रीवैष्णवों को अनिवार्य-रूप से उपादेय व अनुष्ठानयोग्य सदर्थों से भरे "श्रीकूरेशविजय" नामक उत्कृष्ट ग्रन्थ का प्रकाशन, "श्री अनन्ताचार्यप्रकाशनमाला" के पच्चीसवां पुष्प के रूप में, हो रहा है। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है।

"श्रीवत्साङ्कमिश्र" इस शुभनाम से विभूषित "श्रीकूरेश" "श्रीकूरनाथ स्वामी इन शुभनामों से प्रसिद्ध महान आचार्य से चोलराजसभा में, श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण पाञ्चरात्रागम, दिव्य-प्रबन्ध और पूर्वाचार्यों की श्रीसूक्तिरूप (वाणी) प्रमाणबल से, नारायणपरत्व व उनको छोडकर अन्यदेवताओं के परत्व को खण्डन कर उपन्यस्त विषयों का यह सङ्कलन है। क्यों कि श्रीकूरनाथ स्वामी के उपन्यस्त विषयों का ही सङ्कलन होने से इस ग्रन्थ के रचयिता श्रीकूरनाथ स्वामी ही हैं यह मानना अत्यन्त उचित है। नारायण भगवान के परत्व का और अन्य देवताओं के परत्व का खण्डन किया गया है

यह इस ग्रन्थ के अध्ययन करने से ही मालूम होगा। श्रुत्यादि सत्प्रमाणों से विषय की स्थापना करने से समझना कठिन होता है। यह देखकर, श्रीमद्वाद-वाद्रि तिरुमल्लै अनन्ताणयिल्लै अक्कारक्कनि श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्य सम्पत्कुमाराचार्यस्वामीजी ने परम-कृपा से "श्रीकूरेशविजयसार" ग्रन्थ को लिखकर प्रपन्नश्रीवैष्णवों को असीम उपकार किया है। बहुत साल पहले इसका प्रकाशन हुआ है। उसके अलभ्य हो जाने से इसका पुनर्मुद्रण और प्रकाशन हो रहा है।

श्रीकूरेशस्वामी एक सच्छिष्य, सदाचार्य, आत्मगुणसम्पन्न और भूतदयासम्पन्न हैं यह बात साम्प्रदायिक इतिहासग्रन्थों में व्याख्याओं में और यत्र तत्र उपलब्ध है।

भगवद्रामानुजाचार्य को अन्य अनन्य-शिष्यों की अपेक्षा इन पर प्रेम व अनुग्रह विशेषमात्रा में था। आचार्यनिष्ठ और आचार्याभिमान के प्रथमोदाहरण थे।

किं पुनः सब के उद्धारक आचार्य ऐसे सच्छिष्य के सम्बन्ध से अपना उद्धार निश्चित है ऐसा गर्व करते थे।

इस ग्रन्थ के अध्ययन के पहले श्रीधाम
वृन्दावन के विद्वान श्रीमान केशवदेवजी
शास्त्री के लिखे "सन्दर्भ" को, विशेष कर
इन्दौर की प्रपन्नश्रीवैष्णवी श्रीयुता
लक्ष्मी रामानुजदासी (रान्दड) के लिखे
"प्रस्तावना" को अवश्य पढना चाहिये।
न पढने से इस ग्रन्थ अधूरा होगा।

ऐसे उत्कृष्ट ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ
परिश्रम किये उन सज्जनों को
मङ्गलाशासन। वर्धतामभिवर्धताम्।

श्रीरामानुजो विजयते यतिराजराजः
श्रीकूरेशो विजयते यतिराजसन्तः
शुभम

श्रीकाञ्ची· प्र·गादि· श्रीनिवासाचार्यः
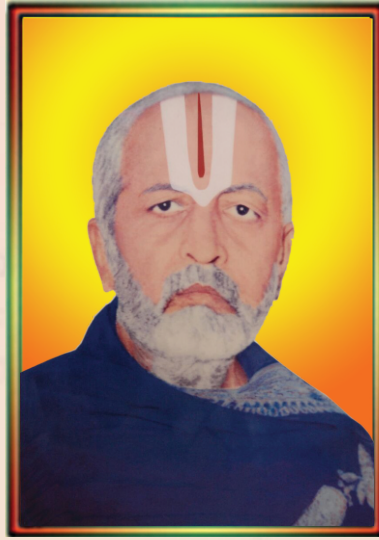
॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य उभय वेदांताचार्य
श्रीशैल अनन्त पूरूष १००८ श्रीमत् यादवाद्रि विद्वान अक्कारक्कनि
सम्पतकुमाराचार्य स्वामीजी महाराज

।। श्री: ।।
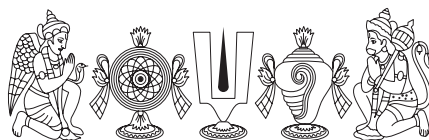
।। श्रीमते रामानुजाय नम: ।।

संदर्भ

श्रीमज्जगद्‌गुरु प्रतिवादि भयंकर श्री १००८ श्री स्वामी अनन्ताचार्यजी महाराज की शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष में श्रीरामदयाल सोमानी । चेरिटेबिल ट्रस्ट बम्बई द्वारा प्रकाशित 'श्रीकूरेश विजय' ग्रन्थ हिन्दी टीका सहित आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसके मूल लेखक श्रीकूरेश स्वामी जी महाराज थे, आप श्रीसम्प्रदाय के आचार्य श्रीरामानुज स्वामीजी के प्रधान शिष्यों में से थे। ग्रन्थ की रचना का श्रोत इस प्रकार से है- दक्षिण भारत में चिदम्बरम् (चित्रकूट) के राजा चोल नरेश जो स्वयं शैव थे उन्होने शिवजी को परतत्व निर्णय दिया और तत्कालीन अनेक विद्वानों से अपने मत की परिपुष्टि कराई। इसे देख किसी श्रीवैष्णव ने राजा से कहा राजन ! शिवपरत्व पर आज के विद्वानों के शिरोभूषण श्रीरामानुजाचार्यजी व श्रीकूरेश स्वामीजी से भी व्यवस्था ली जाय तभी आपका संगृहीत मत सार्वभौम हो सकेगा। राजा के बुलाने पर श्रीकूरेश स्वामीजी, श्रीमहापूर्ण स्वामीजी राजा की सभा में पधारे। उस सभा में तीन ही शैव वेदान्त के विद्वान थे । सात दिन-रात शास्त्रार्थ चलता रहा अन्त में श्रीकूरेश स्वामीजी की विजय हुई ।

इस ग्रन्थ के आदि में ५ श्लोक शिवपरत्व के हैं जो चोल नरेश की राज सभा के पण्डितों ने इन श्लोकों के द्वारा भगवान पर सार्धशत

दूषण लगाये थे। इन्हीं का उत्तर ३१ श्लोकों द्वारा इस ग्रन्थ में दिया गया है। इस ग्रन्थ के प्रथम टीकाकार श्रीधर्माचार्यजी थे। इन्होंने संस्कृत व्याख्या द्वारा श्लोकों का मार्मिक अर्थ शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा अत्यन्त सुन्दर लिखा है और श्रीविष्णु ही परमतत्व है इस निर्विवाद विषय को सामने रखा है।

संस्कृत व्याख्या सहित इस ग्रन्थ को सर्व प्रथम जगन्नाथपुरी एम्बारमठ के पूज्य महन्त वैकुण्ठवासी श्री १००८ श्रीगदाधर रामानुजाचार्य स्वामीजी महाराज अपने प्रेस 'श्रीरघुनन्दन प्रेस' में सन् १९४७ छपवाकर प्रकाशित किया था। एक संस्करण वैकुण्ठवासी श्रीस्वामी धरणीधराचार्यजी महाराज ने अपने निजी श्रीनिवास प्रेस से संस्कृत टीका सहित प्रकाशित किया। पुरी के श्रीस्वामीजी महाराज ने इसका द्वितीय संस्करण 'श्रीवैष्णव प्रेस' प्रयाग से श्रीस्वामी रामटहल दासजी की देख-रेख मे कराया। पुरी से 'श्रीवचनभूषण' आदि ग्रन्थ भी श्रीवैष्णवों के उपयोगी प्रकाशित हुए है।

आज श्री सोमानी ट्रस्ट द्वारा श्रीवैष्णव ग्रन्थों का प्रकाशन पर्याप्त मात्रा में हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी करण पूज्य श्री ति. अ. श्रीसम्पत् कुमाराचार्यजी महाराज कांची व प्रत्येक श्लोक का हिन्दी अनुवाद करने में श्री गिरीराजप्रसाद शास्त्रीजी वृन्दावन ने जो परिश्रम किया है तदर्थ वे महानुभाव धन्यवादार्ह हैं।

भावत्कः

केशवप्रपन्नः

✻ परोपन्यस्तपूर्वपक्षश्लोकाः ✻

गायत्री बोधितत्वाद्दशरथतनयस्थापिताराधितत्वा-
च्छौरेः कैलासयात्राव्रतमुदिततयाभीष्टसन्तानदानात् ।
नेत्रेण स्वेन साकं दशशतकमलैर्विष्णुना पूजितत्वा -
त्तस्मै चक्रप्रदानादपि च पशुपतिस्सर्वदेवप्रकृष्टः ।।१।।

कन्दर्पध्वंसकत्वाद्गरलकबलनात्कालगर्वापहत्वा-
द्दैतेयावासभूमित्रिपुरविदलनाद्दक्षयागे जयित्वात् ।
पार्थस्य स्वास्त्रदानान्नरहरिविजयान्माधवे स्त्रीशरिरे
शास्तुस्सम्पादकत्वादपि च पशुपतिस्सर्वदेवप्रकृष्टः ।।२।।

भूमौ लोकैरनेकैस्सततविरचिताराधनत्वादमीषा-
मष्टैश्वर्यप्रदत्वाद्दशविधवपुषाकेशवेनार्चितत्वात् ।
हंस क्रोडाङ्गधारिद्रुहिणद्रमुरहरादृष्टशीर्षाङ्घ्रिकत्वा-
ज्जन्मध्वंसाद्यभावादपि च पशुपतिस्सर्वदेवप्रकृष्टः ।।३।।

वाराणस्याञ्च पाराशरिनियम भुजस्तंभनात्प्राक्पुराणां
विध्वंसे केशवेनाश्रितवृषवपुषा धारितक्ष्मातलत्वात् ।
अस्तोकब्रह्मशीर्षास्थिनिशकृतगलालङ क्रियाभूषितत्वा
द्दानाच्च ज्ञानमुक्त्योरपि च पशुपतिस्सर्वदेवप्रकृष्टः ।।४।।

वैशिष्ट्यै योनिपीठायितनरकरिपुश्लिष्टभावेन शम्भो-
स्स्वस्यैकार्धप्रतीकायितहरवपुषाऽऽलिङ्गितत्वेन यद्वा ।
अप्राधान्याद्विशिष्टाद्वयसमधिगमे दानवानामराते-
श्शम्भोः प्राधान्ययोगादपि च पशुपतिस्सर्वदेवप्रकृष्टः ।।५।।

* अवतारिका *

श्रियः पतित्वादपि भूपतित्वं प्रख्यापयित्वा परमं मुरारेः ।
भूमिस्तवे भूपतिनामतिष्ठां वंशप्रतिष्ठां महतीमवाप ।।१।।

धर्माचार्यः सुधीः सोयं निर्माति विदुषां मुदे ।
विष्णुपारम्यपद्यानां प्रमाणमणिसम्पुटम् ।।२।।

पत्युः पशूनां परतां पद्यैः पञ्चभिरावृताम् ।
निराकरोति कूरेशो बुधसङ्ख्यागतैस्तु तैः ।।३।।

पञ्चविंशतिकक्षाभिरुपन्यस्ते मते परैः ।
सार्धया शतदूषण्या सिद्धान्तं वक्ति कूरराट् ।।४।।

सिद्धान्तं वक्तुमारेभे सप्रमाणं हि कूरराट् ।
तत्र भूपसभामध्ये विदुषां मोहमावहन् ।।५।।

श्रीकूराधिपवाक्यानां व्याख्याने भुवि कः प्रभुः ।
तत्प्रसादस्तु लेखिन्या मया लिखति तत्स्वयम् ।।६।।

|| श्री:||

|| श्रीमते रामानुजाय नम: ||

|| श्रीवत्सचिह्नमिश्रेभ्यो नमः ||

|| श्रीमद्वरवरमुनये नमः ||

श्रीकूरेश विजयसार

-० व्याख्या ०-

श्रीशैलअनन्त पुरुष श्रीस्वामी सम्पत्कुमाराचार्यजी महाराज, कांचीपुरम्

श्रीवत्सचिह्नमिश्रेभ्यो नमउक्तिमधीमहे ।
यदुक्तयस्त्रयीकण्ठे यान्ति मङ्गलसूत्रताम् ।।

श्रियःपति, श्रीवैकुण्ठवासी, अवाप्तसमस्तकाम और उभय विभूतिनाथ भगवान् ही **सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति** (सभी वेद जिन्हीं का कीर्तन करते हैं) **वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः** (समस्त वेदों के द्वारा मैं ही वेद्य हूँ) इत्यादि प्रमाण वचनों के अनुसार समस्त वेद प्रतिपाद्य देवता सार्वभौम हैं । इस अर्थका श्रीपरांकुश परकालयतिवरादि हमारे सभी आल्वारों तथा आचार्यों ने अपनी अमृतोपम सुमधुर दिव्य श्रीसूक्तियों के द्वारा स्वयं अनुभव करके संसारियों को भी उसका सुन्दर उपदेश देकर अनुभव कराया है। ऐसी अवस्था में **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानम धर्मस्य** इत्यादि भगवद्गीतोक्त प्रकार से अधर्म की कुछ वृद्धि हुई जिसके फलतया किन्हीं भाग्यहीनों के मन में उक्त परात्पर देवता की श्रेष्ठता के विषय में शंका उत्पन्न हुई । तब उस समय के चोलनरेश जो घोर शैव एवं वैष्णव द्वेषी था ने एक पत्र पर **शिवात्परतरं नास्ति** शिवजी से श्रेष्ठ परतत्व अन्य नहीं है। लिखकर उसके नीचे सभी वैदिक विद्वानों के हस्ताक्षर लेने की चेष्टा की। कितने

ही विद्वानों ने निर्बन्ध, भय, द्रव्यलोभ इत्यादि कारणों से हस्ताक्षर किये। इतने मात्र से तृप्ति लाभ न कर उस राजा ने श्रीरंग क्षेत्र में श्रीरङ्गनाथ भगवानकी बहुविध सेवा में तत्पर तथा उभय वेदान्त ग्रन्थों का प्रवचन, धर्म प्रचार आदि करते हुए विराजमान श्रीरामानुज स्वामीजी को राज सभा में पधारने का सन्देश, दूतों के द्वारा भेजा। इस षड्यन्त्र को मठ के द्वार पर विराजमान, वाचामगोचर महागुण वाले एवं त्रिविध मद रहित श्रीकूरेश स्वामीजी महाराज ने पहिचान लिया और वे श्रीरामानुज स्वामीजी को सूचना दिए विना ही स्वयं श्रीरामानुज वेषधारी होकर वहां से चल दिये और श्रीमहापूर्ण स्वामीजी को साथ लेकर राज सभा पधार गये । वहां पर उन्होंने राजा का सनिर्बन्ध वचन सुनकर, उसकी अप्रसन्नता की किंचित् भी चिन्ता न करते हुए, '**शिवात्परतरं नास्ति**' के नीचे '**द्रोणमस्ति ततः परम्**' लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दिये । यह तो शिव पर सीधा व्यंग्य था। संस्कृत भाषा में शिव शब्द एक सेर जितनी एक छोटी नाप का कहते हैं और द्रोण शब्द तो सोलह सेर जितनी एक बड़ी नाप का नाम है । तथा च 'शिवात्परतरं नास्ति' का यह भी एक अर्थ हुआ कि सेर से बड़ी नाप दूसरी नहीं । जिसका खण्डन करते हुए श्रीस्वामीजी ने लिखा कि सोलह सेर वाली द्रोण नामक नाप उससे बड़ी है । इससे यह भी सूचित किया गया कि शिवजी से भी बड़े देव (श्रीमन्नारायण) अवश्य हैं !

फिर श्रीस्वामीजी ने वेद, वेदांग, इतिहास पुराण आदि के कई वचनों के आधार से यह अर्थ अतिस्पष्ट बता दिया कि वास्तव में भगवान श्रीमन्नारायण ही पर देवता है, न कि दूसरा कोई । वाद के आचार्यों ने श्रीस्वामीजी के उस प्रवचन को '**श्रीकूरेशविजय**' नामक लघु पद्य ग्रन्थके रूप में लिखकर हमारे उपयोग के लिए उसका प्रचार किया । उस ग्रन्थ में पहले शिवपारम्यवादियों के आक्षेप और बाद में

एक-एक करके उनके समाधान बताये गये हैं। अब हम तो उक्त आक्षेपों को छोड़ कर समाधान मात्र का सरल विवरण करेंगे ।

श्रीमन्नारायण को ही पर देवता स्थापित करने वाले प्रमाण ये है- स्नान आचमन सन्ध्यावन्दन इत्यादि नित्यनैमित्तिक कार्य करने के समय प्रारंभ में गोविन्द, विष्णु, केशव इत्यादि भगवन्नामों का ही उच्चारण किया जाता है (न कि दूसरे किसी देव को) वेद पाठ करने वाले प्रारम्भ में 'हरिः ॐ' कहते हुए हरि शब्द ही लेते हैं। प्रसिद्ध सवितृगायत्री में (**भर्गो देवस्य धीमहि करके**) सूर्यमण्डल मध्यवर्ती श्रीमन्नारायण के ही दिव्य तेज का ध्यान किया जाता है। वेद का मूल प्रणव भी भगवान का वाचक है। सृष्टि स्थिति प्रलय में स्थिति नामक जगद्रक्षण कार्य परमसत्त्वसमाश्रय श्रीमन्नारायण का ही असाधारण कार्य है । (यद्यपि उक्त तीनों कार्य भगवान् के ही होते हैं तथापि यह प्रसिद्धि है कि ब्रह्माजी सृष्टि के एवं शिवजी संहार के कर्ता हैं तथापि रक्षण का कार्य दूसरे किसी को कभी नहीं दिया गया, वह स्वयं भगवान का ही रहा है।) यद्यपि वैदिक कार्यों में कभी-कभी अन्य देवों का भी पूजन करना पड़ता है। तथापि वे पूजन **सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति** (सभी देवों को लक्ष्य कर किया जाने वाला नमस्कार भगवान को ही प्राप्त करता है।) इस प्रकार से वह भगवान का ही पूजन माना गया है। यह भी एक प्रसिद्ध पद्य है, **प्रायश्चिन्तान्यशेषाणि तपः कर्मात्मकानि वै । यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ।।** किन्हीं दोषों के प्रायश्चित्तार्थ जो तपस्या कर्म इत्यादि किये जाते हैं, उन सब से श्रीकृष्ण नामस्मरण ही श्रेष्ठ है । इसके अनुसार समस्त वैदिक कर्मों को, अपने नामस्मरण मात्र से सफल बनाने वाले श्रीकृष्ण ही परतत्व सिद्ध हुए। एवं वैदिक होम कार्यों में रुद्र की आहुति देने पर हाथ धोने की विधि (अप उपस्पृश्य) रहने से ज्ञात होता है कि वह देव कुछ अशुद्ध है एवं यह भी

बात पुराण प्रसिद्ध है कि वही रुद्र ब्रह्माजी के धोये हुए श्री त्रिविक्रम भगवान के श्रीपादतीर्थ (गंगाजल) को अपने सिर पर धारण करके परिशुद्ध एवं शिव नाम धारी बने।

यह बात असत्य है कि श्रीरामावतार में भगवान ने शिव पूजा की, चूंकि बाल्मीकि रामायण में यह अनुक्त है। तामस पुराणों के वचन तो अनादरणीय होते हैं। बल्कि यहां वृत्तान्त तो प्रसिद्ध है कि रुद्र ने काशी नगरी में श्रीरामतारक मन्त्र का पुरश्चरण करके सिद्धि प्राप्त की। हनुमानजी के बाल से समुत्पन्न रोमेश्वर ही कुछ समय के बाद रामेश्वर कहलाने लगा। अथवा यह भी संभावित है कि श्रीरामचन्द्रजी ने सेतु के रक्षार्थ अपने सेवकों में एक, रुद्र को वहां पर स्थापित किये होंगे। रुद्र को ब्रह्म हत्या पाप से छुड़ाने वाले (श्रीबदरिकाश्रम निवासी) श्रीमन्नारायण ही वास्तव में परदेवता हो सकते हैं।

वेद के अंतर्गत नमक वस्तुतः रुद्र का यशोगान नहीं करता किन्तु वेद भाष्यकारों के अभिप्रायानुसार अग्निदेव के स्तोत्र हैं। वस्तुतः वेद में सभी देवों का स्तोत्र तत्-तत् स्थलों पर किया गया है। इन देवों को भगवान का शरीर होने के कारण ये स्तोत्र भी प्रकारांतर से भगवान के स्तोत्र माने गये हैं। एवं **सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः** इत्यादि प्रमाण के विरुद्ध रुद्र को पर देवता स्थापित करने की सभी बातें अप्रमाणिक हैं।

हरिवंश आदि में एक कैलास यात्रा कथा उपवर्णित है, जिसमें यह बताया गया कि शिवजी ने श्रीकृष्ण को वरदान दिया। परन्तु यह भगवान की एक कपट-नाटक-लीला मात्र है। उसी प्रकरण के शिवजी के इस वचन से यह अर्थ स्पष्ट होता है कि **क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम्। आवां तवाङ्गे संभूतौ तस्मात्केशव नामवान्॥** इसका यह अर्थ है - क, ब्रह्माजी का नाम है और मैं (रुद्र)

तो ईश कहलाता हूँ। हम दोनों आपके श्रीविग्रह से प्रकट हुए; अतः आपका शुभ नाम हुआ केशव ।

वराह पुराण में ऐसा एक शिव-विष्णु संवाद उपवर्णित है - **मर्त्यो भूत्वा भवानेवं मामाराधय केशव । मां भजस्व च देवेश वरं मत्तो गृहाण च । येनाहं सर्वभूतानां पूज्यतरोऽभवम् ।। देवकार्यावतारेषु मनुष्यत्वमुपेयिवान् त्वामेवाराधयिष्यामि मम त्वं वरदो भव ।।** यह तात्पर्य है कि शिवजी ने भगवान से प्रार्थना की, ''हे प्रभो ! आप मानव वेष धारी हो मेरी आराधना कीजिए भजन कीजिए और मुझ से वर माँग लीजिए। ऐसा करने से दूसरे सभी लोग मुझे बड़ा मान कर मेरी ही सेवा करने लगेंगे ।'' यह सुनकर भगवान ने प्रत्युत्तर दिया, ''तथास्तु । देवों के कार्यार्थ जब मैं मनुष्य अवतार लूं, तब तुम्हारी पूजा करूंगा और तुम मुझे वर देना ।'' इस प्रार्थना और तदनुगुण अपने वचन को सफल बनाते हुए हो श्रीकृष्ण ने शिवजी से वर माँगा; नतु अपने से वस्तुतः बड़े मानकर । वस्तुतः अवतारों में मनुष्य भावना के अनुगुणतया भगवान जैसे अन्य देवता माता पितृ आचार्यादिकों की सेवा करते हैं, ठीक इसी प्रकार कदाचित् शिवजी की भी पूजा करेंगे तो इससे उनको कोई कमी न होगी । शिवजी के अंश संभूत अश्वत्थामा के अपाण्डवास्त्र से दग्ध उत्तरा के गर्भस्थ पिण्ड (परीक्षित) को अपने पादस्पर्श मात्र से जीवित करने वाले देव ही वास्तव में परदेव हैं !

यह भी केवल कल्पना मात्र है कि श्रीमहाविष्णु ने एक हजार कमलों से शिवजी की अर्चना करके उसके फल स्वरूप उनसे सुदर्शन चक्र पाया । ऋक् यजु सामवेदों में यह स्पष्ट बताया गया है कि सुदर्शन चक्र सर्वदा भगवान के साथ ही रहने वाले हैं। शंख चक्रों के उत्पत्ति वचन तो उनके अवतार की ही बातें हैं । (अर्थात् भगवान की और उनके दूसरे अनुयायियों की भांति दिव्यायुधों का भी जन्म कहीं बताया जाता

है) भगवच्छास्त्र में यह वृत्तान्त उपवर्णित है कि शिवजी ने एक हजार चंपक पुष्पों से भगवान की अर्चना की और जब उसमें एक फूल कम हुआ, तब उसके बदले में अपनी नासिका को ही काट कर चढ़ाया और तत्फलतया भगवान से शूलायुध पाया। अगस्त्यसंहिता का वचन है कि चक्र से ही फूल का जन्म हुआ। यह भी बात है कि शूल मय (दानव) का निर्मित है। यह तो अत्यन्त प्रसिद्ध है कि सुदर्शन चक्र ने शिवपुरी काशी को जला दिया।

त्रिपुर संहार वृत्तान्त को लेकर शिवजी को पर देवता कहना भी अनुचित है। चूंकि वेद और महाभारत में स्पष्ट बताया ही गया है कि भगवान की दी गई शक्ति के प्रभाव से ही उन्होंने त्रिपुर-ध्वंस किया। वेद में तो **तेषामसुराणां तिस्रः पुर आसन् रुद्रो वै क्रूरः सोस्यतु** (उन असुरों के तीन पुर थे.... रुद्र ही क्रूर होता है अतः उन्हीं को यह तीर छोड़ना चाहिए।) इत्यादि प्रकरण में स्पष्ट कहा गया कि **विष्णुं तेजनम्** (श्रीविष्णु ही बाण की तेजी बने)। महाभारत का वचन तो यह है - **विष्णुरात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः। तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं स विषेहे महेश्वरः ।।** इसका यह भाव है कि भगवान विष्णु अमित तेज शिवजी के अन्तर्यामी हो उन्हें शक्ति प्रदान करने लगे, अतएव महादेव उस (बड़े) धनुष की प्रत्यञ्चा का स्पर्श कर सके। तैत्तिरीयारण्यक का वाक्य है- **तस्येन्द्रो वम्रिरूपेण, धनुर्ज्यामछिनत् स्वयम्... शिर उत्पिपेष** अर्थात् महेन्द्र ने रुद्र के हाथ मे पकड़े हुए धनुष की प्रत्यञ्चा को मेडक के रूप में प्रकट हो काट लिया उससे वह धनुष शिथिल हो चौंक उठा और वेग में रुद्र का सिर काट लिया।

अमृत मथन के बाद उस अमृत को केवल देवों की गोष्ठी में ही बाँट देने के लिये भगवान ने जो स्त्री वेष का ग्रहण किया और जिससे शिवजी मोहित हुए उस वृत्तान्त को लेकर शिवजी को पर देवता मानना

भी अनुचित है। उस समय 'पुरुष', 'पुरुषोत्तम,' 'पुराण पुरुष' इत्यादि कहलाने वाले भगवान स्वयं स्त्री नहीं बन गये, किन्तु नट की भाँति केवल स्त्री वेषधारी ही थे। भगवद्गीता में भगवान ने अर्जुन को दिव्य चक्षु देकर अपना विश्वरूप में अनेक अन्य देवादिकों के साथ शिवजी भी एक कोने में रह गये। ऐसे वे परदेवता कैसे हो सकते हैं ? शैव लोग ही संसार में अधिक मात्रा में मिलते हैं और वैष्णव कम हैं। यह तो सत्य है। परन्तु इससे क्या लाभ ? क्या इतने मात्र से शिवजी परदेवता हो सकते हैं ? नहि-नहि। लोक में असार चीजें अधिक मात्रा में सर्वत्र अति सुलभतया मिलती हैं। क्या इससे उनका महत्व हो जाता है और कम मिलने वाले सोना, चांदी, हीरा आदि क्षुद्र हो जाते हैं। वात तो उल्टी है।

वेद व्यासजी ने अपना हाथ उठाकर घोषणा की- **वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न दैवं केशवात्परम्** माने वेद से बढ़कर दूसरा श्रेष्ठ देव नहीं रहता। वेद में अनेकत्र यह वार्ता आती है कि रुद्र ने कभी कभी ऐसी वर प्रार्थना की, कि **अहमेव पशूनामधिपति रसानि** (मैं ही पशुओं का, माने यज्ञ में बचे हुए द्रव्यों का, स्वामी होजाऊं) इत्यादि। परन्तु कहीं भी यह बात सुनने में नहीं आई है कि विष्णु ने कभी किसी से कुछ वरदान माँगा। एतदुपरान्त **अग्निरवमो देवतानां विष्णुरुत्तमः** (समस्त देवों से अग्नि नीच है ओर विष्णु सबसे श्रेष्ठ हैं।) इत्यादि वचन स्पष्ट ही भगवान के परत्व का प्रतिपादन करते हैं।

सहस्रनामाध्याय का यह प्रसंग प्रसिद्ध है कि जब पार्वती ने पूछा कि **केनोपायेन लघुना विष्णोर्नामसहस्रकम् ।** (माने, लघुतर कौन से उपाय से भगवान का सहस्रनाम जप संक्षेप से किया जा सकता है ?) तब शिवजी ने उत्तर दिया कि **श्रीराम राम रामेति रमे रामे मनोरमे । सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने । माने** श्रीराम नाम सहस्रनाम के

सदृश है। इस प्रकार विना संकोच श्रीरामनाम की महिमा गानेवाले शिवजी कैसे परदेवता हो सकते हैं।

कहाँ तक कहें ? उपनिषद् की स्पष्ट वाणी है कि **एको हवै नारायण आसीत् न ब्रह्मा नेशानः** माने प्रलयकाल में एकमात्र नारायण थे, न कि ब्रह्मा, शिव इत्यादि दूसरा कोई इस प्रकार वेदादि सकल शास्त्रों के द्वारा प्रतिपादन श्रीमन्नारायण-परत्व को हमारे आल्वार तथा आचार्य स्पष्ट रूप से अपने अपने ग्रन्थों में प्रकाशित कर रहे हैं।

श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी की पादसेवा के फलतया श्रीकूरेश स्वामीजी ऐसे अनेक सुन्दर प्रसंगों को समझाकर, राजसभा में गंगा प्रवाह के सदृश अद्भुत ढंग से अति मधुर वाणी से उन सबका विवरण करके धर्म संस्थापक आचार्य रूप से विराज रहे थे ।

अर्वाञ्चो यत्पदसरसिजद्वन्द्वमाश्रित्य पूर्वे
मूर्ध्ना यस्यान्वमुपगता देशिका मुक्तिमापुः ।
सोऽयं रामानुजमुनिरपि स्वीयमुक्तिं करस्थाम्
यत्संबन्धादमनुत कथं वर्ण्यते कूरनाथः ।।

भावार्थ - श्रीरामानुज स्वामीजी के बाद के आचार्यों ने उनकी शिष्य मण्डली में प्रविष्ट होने से उनके पादारविन्द के सम्बन्ध से, एवं उनके पूर्वतन आचार्यों ने उनकी गुरु परम्परा में प्रविष्ट हो, उनके मस्तक के सम्बन्ध को लेकर मोक्ष पाया। ऐसे महामहिम श्रीरामानुज स्वामीजी ने जिन (श्रीकूरेश स्वामीजी) के सम्बन्ध से अपने को मोक्ष का अधिकारी माना, ऐसे महापुरुष श्रीकूरेश स्वामीजी का हम अधिक वर्णन कैसे कर सकते हैं ।

श्रीकूरनाथ स्वामीजी की जय हो ।

✻ प्रस्तावना ✻

आचार्य द्वारा भगवत् शरणागति होने के पश्चात् भी कई श्री वैष्णवों को यथार्थं भगवत् स्वरूप ज्ञान नहीं होने पाता। अखिलकोटि ब्रह्माण्ड नायक श्रियःपति श्रीमन्नारायण ही सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है यह रहस्य कोई कोई ही जानता है। भगवत् शास्त्रों में आया है कि -

''कीटादि कोटि शत जन्मसु मानवत्वं ।
तत्रापि कोटि शत जन्मसु ब्राह्मणत्वं ।।
तत्रापि कोटि शत जन्मसु वैष्णवत्वं ।
तत्रापि कोटि शत जन्मसु मत्परत्वं ।।''

अर्थ:- ''भगवान कहते हैं कि कीट, पतंग, पशु इत्यादि योनियों मैं करोड़ों बार जन्म लेने के बाद (मेरी निर्हेतुक कृपा से) मानव शरीर प्राप्त होता है। मानव शरीर में भी करोड़ों बार जन्म लेने पर ब्राह्मण शरीर प्राप्त होता है करोड़ों बार ब्राह्मण शरीर लेने पर वैष्णव बनता है, करोड़ों बार वैष्णव बनने पर मेरे को ही परतत्त्व रूप से जानता है।'' इसीलिये ही कई श्रीवैष्णवों के मस्तिष्क में यही धारणा आज तक भी बनी हुई है कि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देव बराबर हैं। जबकि प्रत्येक श्रीवैष्णव नित्य श्रीमद्भागवत, गीताजी, आलवन्दार स्तोत्र, श्रीरामचरितमानस का बड़े प्रेम से पाठ करते हैं किन्तु अर्थ ज्ञान नहीं होने से भ्रम बना रहता है। त्रिविक्रम अवतार में जब भगवान का चरण ब्रह्मलोक पहुँचा तब ब्रह्माजी ने चरण धोकर कमण्डलु में रख लिया, बाद में जब भगीरथजी ने तपस्या किया तब उसी कमण्डलु के जल से गंगाजी भूतल पर पधारने के पूर्व श्रीशंकरजी के मस्तक पर विराजीं तथा उस गंगाजी को शंकरजी ने मस्तक पर धारण किया तभी वे शिव हुए यह कथा श्रीमद्भागवत में है। इस कथा से भी स्पष्ट हो जाता है कि जिनका चरण धोया गया वे ही बड़े देवता है। श्रीगीताजी में जब अर्जुनजी को भगवान ने अपना विराट स्वरूप दिखाया तब अपने मुख में, ब्रह्माजी, शंकरजी, अग्नि इत्यादि को दिखाया ही था। गीताजी में स्वयं भगवान कई स्थानों पर अपना वर्णन

करते हुए अपने परतत्त्व को बताते हैं, फिर भी तीनों देव को जो बराबर समझता है वह महान् भगवदपचार करता है। श्रीआलवन्दार स्तोत्र में **'कस्योदरे हरविरिञ्चिमुखप्रपञ्चः'** इस श्लोक के अर्थ से स्पष्ट ज्ञात होता है कि, प्रलयान्त में श्रीमन्नारायण ही अपने विशाल पेट में ब्रह्माजी, शिवजी इत्यादि समस्त चराचर जगत को रख लेते हैं और पुनः नाभि कमल से ब्रह्माजी को उत्पन्न करते हैं और ब्रह्माजी से रुद्र होते हैं।

श्रीरामचरितमानस के पाठ करने वाले समझते हैं कि रामेश्वर की स्थापना श्रीरामजी ने की है किन्तु वे मानस की यह कथा भूल जाते हैं कि जब सती को मोह हुआ और श्रीरामचन्द्रजी की परीक्षा लेने के लिये श्रीजानकीजी का वेष धारण किया, तब उस दिन से ही श्रीशंकरजी ने सती के प्रति हृदय से पत्नीभाव को त्याग दिया था क्योंकि जगज्जननी का रूप धारण करने वाली माता से पत्नीभाव कैसे रक्खें ? वास्तव में ही श्रीरामजी को इष्टदेव मानकर उनकी उपासना भजन शंकर जी सदा सर्वदा करते आरहे हैं।

जो व्यक्ति अन्य देवताओं के समान ही श्रीमन्नारायण को समझता है वह चन्द्र और सूर्य की आयु तक घोर नरक में वास करता है।

यस्तु नारायणं देवं सामान्येनाभिमन्यते ।
स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।

इसलिये जब तक "**श्रीमन्नारायण ही परतत्त्व है**" ऐसा दृढ़ निश्चय नहीं होगा तब तक भगवान का अपार वैभव और महत्त्व भी नहीं जाना जा सकेगा और विना जाने अपना स्वरूप जो अकिंचन् और अनन्य गति है इसको भी नहीं जान सकेगा और उसके विना शरणागति से मिलने वाला जो परम पुरुषार्थ है वह भी प्राप्त नही हो सकेगा। कहीं श्रीवैष्णव इस परम पुरुषार्थ से वंचित न रह जावें इसलिये "**श्रीकूरेश विजय**" प्रकाशित किया जा रहा है।

- लक्ष्मी रामानुजदासी

* श्रीकूरेशविजयः *

॥ अथ मूलग्रन्थारम्भः ॥

गायत्रीपूर्वकृत्याचमनविधिपुरस्कारसंकल्पकार्ये
गोविन्दाख्याप्रयोगाद्धरिरिति कथनाच्छुत्यधीत्यादिकाले ।
भर्गश्शब्दस्य सूर्यात्मकहरिमहसो वाचकत्वात्पुरस्ता-
दोंकाराख्येयभावादवननिजगुणाच्छुद्धसत्वाश्रयत्वात् ॥१॥

अर्थः- गायत्री जप, संध्या, आचमन तथा संकल्प आदि श्रौतस्मार्त कार्यों में गोविन्द (केशव, माधव, नारायण, हृषीकेश प्रभृति भगवन्नाम समुदाय) का प्रयोग होता है, वेदाध्ययन के समय में 'हरि ॐ तत्सत्' का उच्चारण किया जाता है, वेद मन्त्र के उच्चारण में सर्व प्रथम ॐ का उच्चारण किया जाता है। गायत्री मन्त्र में प्राप्त 'भर्गः' शब्द सूर्यमण्डल मध्यवर्ती श्रीमन्नारायण के तेज का ही वाचक है (शिव का नहीं क्योंकि) गायत्री के आरम्भ में ओंकार के द्वारा (अ... विष्णु, उ.... रमा, मु.... जीव) प्रकृति पुरुष विशिष्ट परमतत्व भगवान् विष्णु को कहा गया है। ब्रह्मा एवं महादेव के द्वारा होने वाला सृष्टि तथा संहार रूप कार्य भगवान् के संकल्प के आधीन है, जबकि जगत् का पालन भगवान् का अपना स्वाभाविकगुण है, भगवान् शुद्ध सत्व के आश्रय हैं अतः सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१॥

प्रख्याताशेषदेवप्रणमनविषयत्वात्तपोयज्ञकर्म-
स्तोमन्यूनाधिकत्वप्रशमपटिमवद्दिव्यनामस्मृतित्वात् ।
ब्रह्मण्यत्वाद् गिरीशाहुतिविधिषु जलस्पर्शनाद्विष्णुपादा-
म्भोजाताम्भोधरत्वादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ॥२॥

अर्थः- प्रसिद्ध है कि सभी देवताओं को किया गया प्रणाम भगवान विष्णु को प्राप्त होता है, भगवान् विष्णु के दिव्य नामों का स्मरण

- तपस्या, यज्ञ तथा विविध कर्म समुदाय की न्यूनाधिकता को दूर करने में समर्थ है । भगवान् ब्रह्मण्य (अर्थात् भक्तवत्सल) हैं, 'रुद्रयाग' इत्यादि में भी पवित्रता हेतु भगवन्नाम-स्मरण पूर्वक आचमन किया जाता है, शिवजी भगवच्चरणोदक गंगाजल को धारण कर महादेवजी हो गये अतः भगवान विष्णु ही सर्वोत्तम परतत्व हैं पशुपति नहीं ।।२।।

वाल्मीक्यप्रोदितत्वाद् गिरिशनुतिगिरां तामसत्वाच्च काश्यां
रामाख्यान्मन्त्रजापादपि च हनुमतः पुच्छरोमेश्वरत्वात् ।।
सेतुत्राणाय यद्वा परिजनविधया स्थापनादब्धितीरे
रक्षोहत्यामदोषाद्गिरिशकृतनिजब्रह्महत्यानिरासात् ।। ३ ।।

अर्थः - श्रीवाल्मीकि महर्षि ने भगवान् राम के द्वारा शिवजी की स्तुति का वर्णन नहीं किया, (सौ अध्याय के सेतु-माहात्म्य ग्रन्थ में सेतु दर्शन मात्र को ही मुक्ति का हेतु कहा गया है) महादेव जी की स्तुति के सम्बन्ध में जो वाक्य अन्यत्र कहीं मिलते भी हैं वे तामस भाव से प्रेरित होने के कारण अनादरणीय हैं। महादेवजी काशी में रामनाम रूपी महामंत्र का जप करते हैं। श्रीहनुमानजी की पूंछ के रोमों से शिवलिङ्ग की रचना महाभारत में कही गई है । वे पुच्छ रोमेश्वर हैं। समुद्र तट पर सेतु की रक्षा के लिए अथवा अपना सेवक मानकर भगवानने शिवजीकी स्थापना की। राक्षसराज रावण के वध से भगवान् को ब्रह्महत्या नहीं लगी जब कि महादेव जी को ब्रह्मा के शिरश्च्छेदन से ब्रह्महत्या लगी और महालक्ष्मी जी के द्वारा दी गई भिक्षा से वह दूर हुई, यह श्रीरामवर संहिता में प्रसिद्ध है ।। ३।।

कण्डूर्नाङ्कूप्र यागादिकनगर महापापनाशादिदेशा-
दिष्वीशानेन हत्यानिवहविहतये स्थापिताराधितत्वात् ।
गौरीशेष्वासभङ्गादथ रघुपतिसन्दर्शिताद्वैश्वरूप्यात्काश्याः
कृष्णेन दानादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रवृष्टः ।।४।।

अर्थः- अपनी ब्रह्महत्या दूर करने के लिए महादेवजी ने, तिरुक्कण्डु, तिरुणाङ्कुर तथा तीर्थराज प्रयाग आदि महापाप नाशन क्षेत्र कपाल मोचन प्रभृति तीर्थों में विराजमान भगवान् की आराधना की। भगवान् ने गर्व दूर करने के लिए महादेवजी का धनुष तोड़ा, हजारों मन्वन्तरों तक की तपस्या के फल के रूप में राघवेन्द्र भगवान् श्रीराम ने महादेवजी को अपने 'विश्वरूप' का दर्शन कराया। पुण्य क्षेत्र आनन्दवन में केशव भगवान् की प्रतिष्ठा करके ब्रह्माजी ने उन्हीं के नाम से काशी नाम नगरी का निर्माण किया और भगवान् की आज्ञा से उस काशी नगरी का दान महादेवजी के लिए किया ऐसा पुरातत्ववेत्ताओं का कथन है अतः शिव से विष्णु ही पर हैं ।।४।।

विद्यारण्योज्झितत्वान्नमकचमकयोर्वेदभाष्ये तदर्थ-
व्याख्यानाद्दक्षयागे हरचकितसुरोदीरितस्तत्स्तुतित्वात् ।
विष्णावाम्नायवाचामपि सकलगिरां मुख्यवृत्तेश्च तस्मिन्
शम्भोर्नामाप्रयोगात्क्वचिदपि चमके विष्णुशब्दप्रयोगात् ।।५।।

अर्थः- विद्यारण्यस्वामी ने वेदभाष्य में नमक चमक के तदर्थ भाष्य को नहीं कहा है। साथ ही नमक चमक तो दक्षयज्ञ में महादेवजी से डरे हुए देवताओं द्वारा की गई स्तुति मात्र है, (किसी भयभीत व्यक्ति का कथन प्रमाण नहीं होता) अन्यत्र भी वैदिक ऋचाओं के मुख्य अभिधेय (प्रतिपाद्य) भगवान् विष्णु ही है। नमक चमक अध्याय में शम्भु के नाम तक का प्रयोग नहीं मिलता जबकि इसके विपरीत चमक में 'अग्नाविष्णु' इस स्थान पर विष्णु शब्द का स्पष्ट प्रयोग मिलता है अतः श्रीविष्णु ही श्रेष्ठ हैं ।।५।।

तेनैव न्यायरीत्या सपरिकरहरेः प्रार्थ्यभावाभिधानाद् -
बाहुल्यादेवमाद्यै रनघरघुपतेरेव संसेव्यतोक्तेः ।

मा हिंसीर्मुञ्च धन्वेत्यपि नमकगिरा घोररूपस्य शम्भो-
र्मन्योस्तुत्योक्तिसिद्धेरपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।६।।

अर्थ- इसी तरह हरिवंश इत्यादि में स्थान स्थान पर महादेवजी के द्वारा सपरिकर भगवान् की प्रार्थना कही गई है। ऐसे ही अनेक ग्रन्थों में भगवान् राम-शिवजी के आराध्य कहे गये हैं । 'नमक' अध्याय के ''मा हिंसीर्धन्व मुञ्च'' इत्यादि मन्त्र से शम्भु को 'मन्यु नायक' देव विशेष से तुलना सिद्ध होती है परता कदापि नहीं अत: पर तो भगवान् विष्णु ही है- पशुपति नहीं ।।६।।

घण्टाकर्णाघनाशात्सुमहति हरिवंशे विरिञ्चिस्मरारि-
स्कन्दानां शौरिवंशे क्रमजनिकथनात्केशवस्तोत्रमध्ये ।
तज्जातत्वाभिधानात् तदनुपुरभिदातत्पदाम्भोजपांसो-
र्मौलौ संधारितत्वात्सुतवरभजनायोग्यभावाच्च पौत्रात् ।।७।।

अर्थः- भगवान् श्रीहरि का भजन करने से घंटाकर्ण राक्षस का पाप दूर हुआ, जब तक वह शिवजी का भजन करता रहा तबतक उसे मोक्ष नहीं मिला । परमप्रमाण हरिवंश पुराण में ब्रह्मा, महादेव एवं स्वामिकार्तिकेय का श्रीकृष्ण वंश में क्रमशः जन्म कहा गया है भगवान् के पुत्र हैं ब्रह्मा और ब्रह्मा के पुत्र हैं महादेव-इत्यादि रीति से महादेवजी भगवान् के पौत्र हैं लौक में भी पितामह से बड़ा पौत्र कभी नहीं माना जाता । श्रीकेशव स्तोत्र में स्वयं महादेवजी ने अपन उत्पत्ति क्रम इसी प्रकार माना है। तदनुसार ही श्रीकृष्ण चरणारविन्द मकरन्द को महादेवजी ने अपने सिर पर धारण किया। अत: भगवान् श्रीकृष्ण ने कैलाश पर जाकर भजन किया और महादेवजी ने उन्हें पुत्र प्राप्ति का वर दिया यह एक नाटक मात्र है जो भगवान ने अपने प्रिय महादेवजी को गौरव प्रदान करने भर के लिए किया ।।७।।

वाराहाद्युक्तरीत्या स्वकलितवरनिर्वाहहेतोस्तथैवा-
नुष्ठानाद्बद्धदेवार्चन विधिषु मनुष्यावतारेष्वदोषात् ।
तादृक्पादाब्जधूलीभरणजुषि हरे मूलभुते मुकुन्द-
स्यात्याधिक्यादनादेरपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।८।।

अर्थः - वाराहपुराण में महादेवजी ने भगवान् से अपने आराधन की प्रार्थना की है और कहा है आपसे यह प्रार्थना इसलिए है कि मैं सर्वपूज्य समझा जाऊँ। भगवान ने भी प्रार्थना सुनकर उत्तर दिया कि मैं देवताओं की कार्य सिद्धि के लिए जब अवतार ग्रहण करुँगा तब आपके इस मनोरथ को पूर्ण करुँगा। अतः कृष्णावतार में भगवान ने उनका मनोरथ पूर्ण किया। अपने गुरुजनों नन्द, यशोदा, वसुदेव देवकी तथा अन्य देवताओं की पूजा प्रभु की नर लीला है। ऐसे दयालु प्रभु को चरणधूलि स्वयं महादेवजी धारण करते हैं, महादेवजी के अपर अवतार अश्वत्थामा के अस्त्र से भगवान् ने परीक्षित् के प्राणों को रक्षाकर अपना अधिक्य प्रकट किया है- लोक में भी मारने वाले से जीवित करने वाला बड़ा कहा जाता है, साथ ही भगवान् अनादि हैं अतः वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ।।८।।

पूर्वं चक्रस्य सत्वाद्धरिभजनकृता हेमपुष्पैस्सहस्रै -
श्शूलार्थं शूलिनैकप्रसवसमनिजच्छिन्ननासार्चितत्वात् ।
चक्राच्छूला युधाप्तरेपि मयकरतोऽगस्त्यसत्संहितोत्क्या
चक्रत्रासाद्द्रुतत्वादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।९।।

अर्थः- भगवान् के दिव्य अस्त्र सुदर्शन चक्रराज अनादि कहे गये है जबकि भगवान् का भजन करके-हजार चम्पा फूलों से भगवान् की पूजा करते हुए एक दिन एक फूल के कम हो जाने पर तत्सदृश अपनी नासिका काट कर भेट करके-भगवान् को प्रसन्न बनाकर

महादेवजी अपना अस्त्र त्रिशूल भगवान् से प्राप्त किया। अगस्त्य संहिता के अनुसार शूली महादेव ने सुदर्शन चक्र की पूजा करके त्रिशूल प्राप्त किया । अन्यत्र मयदानव के हाथों त्रिशूल का निर्माण कहा गया है । काशी दाह के समय श्रीचक्रराज के भय से पशुपति भाग खड़े हुए अत: उनसे भगवान् विष्णु ही प्रकृष्ट हैं ।।९।।

पुष्पेष्वासप्रणीतादपि च पुरभिदः पौरुषार्धावशेषा-
त्कीर्तिश्रीकामकामातुरहरविगलत् पारदौघप्रवाहात्।
दम्पत्योरात्मदासायितभृगुविहिताल्लिङ्गचिच्छेदनाच्चा-
नङ्गप्रध्वस्तभावादपि च पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।१०।।

अर्थः- फूलों का धनुष धारण करनेवाले कामदेव ने त्रिपुरारि महादेवजी को आधा नर और आधा नारी (अर्द्धनारीश्वर) कर दिया। काम के वशीभूत होकर स्खलित महादेवजी का तेज पारे के रूप में बहने लगा। इस प्रकार महादेवजी के वैराग्य को विगलित करके कामदेव अपने यशोरूप देह में (स्थूल देह को त्यागकर) स्थित हुआ क्योंकि शूरवीर प्राणों की अपेक्षा यश को श्रेष्ठ मानते हैं। भगवान लक्ष्मीनारायण के दास भृगु महर्षि ने महादेवजी के लिङ्ग का छेदन किया । लक्ष्मीजी के पुत्र कामदेव ने महादेवजी के शरीर से आधा पौरुष निकाल कर महादेवजी को विकल कर दिया अतः श्री विष्णु भगवान् ही श्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ।।१०।।

स्तोत्रप्रीतातिशुभ्रकृतिदनुजभिदुच्छिष्टहालाहलाणु-
स्वीकारश्यामभावाद्गिरिशगलभुवः केशवेनैव पूर्वम् ।
अस्तोकक्ष्वेलभुक्तेरखिलनिजवपुः कृष्णतासूचितत्वा-
त्ताक्ष्र्यध्यानोपरोधादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।११।।

अर्थः- महादेवजी की प्रार्थना पर श्रीशिवजी को चतुर्भुज 'दनुजारि' भगवान् ने अपना प्रसादी थोडासा अणुमात्र जहर छोड़ दिया जिसके पान करने से शिवजी नीलकण्ठ हो गये । नीलकंठ महादेव से पहले भगवान् ने समस्त जहर का पान किया अतः उनका सम्पूर्ण श्रीविग्रह श्याम है, यह पाद्मोत्तर खण्ड गरुड पुराणादि में प्रसिद्ध है। नीलकंठ महादेव के कंठ में विषकी गर्मी शान्त करने के लिये सदा गरुड़ध्वज भगवान् निवास करते हैं । तात्पर्य यह कि विष सर्पजन्य माना जाता है अतः उसका शमन करने के लिए महादेवजी सदा गरुडासन प्रभु का जप किया करते हैं। इससे भी सिद्ध है कि विष्णु ही श्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ।।११।।

कालस्यानश्वरत्वादथ जगति यमस्याधुनापि स्थितत्वा-
दारण्याद्यानुवाके हरवधकथनादष्टमाद्यानुवाके ।
कालात् स्वाराट्सहायात्पृथगपि निधनख्यापनात्तस्य मूर्ध्न-
स्सत्रेऽश्विभ्यां च सन्धेरपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः।।१२।।

अर्थः- रुद्र काल और अन्तक आदि भगवान् की विभूतियों में काल अनश्वर है और अन्तक यम भी आज तक स्थित है। परन्तु यजुर्वेद आरण्याद्यष्टमानुवाद में हर (रुद्र) का वध कहा गया है। अन्यत्र भी इन्द्र की सहायता से काल के द्वारा हरका निधन कहा गया है और यज्ञ में अश्विनीकुमारों के द्वारा हरके शिर का पुनः संधान (जोड़ना) कहा गया है। इससे विष्णु ही श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं, पशुपति नहीं ।।१२।।

गीर्वाणस्तोमदत्तस्वपशुपतिवरात्सिद्धतादृग्रसार्थ-
गोरूपत्वाच्च विष्णोश्शिवकलितजटाहोमतो बौद्धवेषात् ।
दैत्यारेर्मुख्यहेतूभवदिषुकलनाद्विष्णुसत्पञ्जरस्य-
प्रागी शेनाश्रितत्वादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।१३।।

अर्थः- देव समुदाय ने प्रसन्न होकर महादेवजी को पशुपति होने का वर दिया, त्रिपुर के अमृत का भगवान् ने गोरूप धारण कर पान किया, इतने पर महादेवजी जब सफल न हुए तो उन्होंने भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए जटाओं का हवन किया । पुनः त्रिपुरासुर का पुण्य क्षीण करने के लिए भगवान् ने बौद्ध वेश बनाया । त्रिपुर का नाश करने के लिए भगवान् विष्णु वाण के अग्रभाग में स्थित हुए, इतने सबके लिए महादेवजी ने 'विष्णुसत्पञ्जर' मन्त्र का आश्रय लिया अतः विष्णु ही श्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ।।१३।।

तस्मिन्यज्ञे मुकुन्दागमपरिभवयोः श्रीशुकाप्रोदितत्वा-
दन्यत्रोक्तोत्तरत्वादपि हरिपरशोखण्डनात्तत्प्रणामात् ।
धात्रे साक्षात्प्रसादादनुदनुजभिदः कृष्णतो विष्णुमूर्तेः
कैलासेशस्य भङ्गादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।१४।।

अर्थः- दक्षयज्ञ में भगवान् के आममन एवं तिरस्कार का श्री शुकदेवजी ने वर्णन नही किया, अन्यत्र कहीं यदि वैसा वर्णन मिलता है तो वह अज्ञान विलसित है, यह उत्तर पहले ही दिया जा चुका है नरनारायण भगवान् के परशु (फर्से) से रूद्र के खण्डन का वर्णन मिलता है। दक्षयज्ञ के नाश के बाद पुनः यज्ञ संधान के लिए ब्रह्मा के आने पर अपने पिता के रूप में महादेवजी ने उन्हें प्रणाम किया। विष्णु भगवान के साक्षात् प्रकट होकर प्रसन्न होने पर वह यज्ञ पूर्ण हुआ । भगवान ने कृष्णावतार में कैलासेश्वर (के मान) का भङ्ग किया अतः भगवान विष्णु ही श्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ।। १४ ।।

अश्वत्थामावतारेश्वरपरिभवनात्सर्वशक्त्याश्रयत्वा-
च्छोरेः पादारविन्दार्पितकुसुमचयालोकनादीशमौलौ ।
कामारेगो स्वार्थाच्चरणविरचनाच्छ्रीनृसिंहेन पूर्व-
तस्यास्त्रस्याग्रतत्वादपि न पशुपतिविष्णुरेव प्रकृष्टः ।।१५।।

अर्थः- अश्वत्थामा महादेवजीके अवतार थे। वे नरावतार अर्जुन के हाथ परास्त हुए और उनके सिर की मणि छीन ली गई, भगवान् श्रीकृष्ण को सब शक्तियों का आश्रय मानकर 'स्वयं' भगवान् कहा गया है। भगवान् के चरणों पर चढे हुए फूलों को महादेवजी अपने शिर पर धारण करते हैं। अर्जुन ने भगवान का गौरव बढ़ाने के लिए तपस्या की अन्यथा नृसिंहावतार में हिरण्यकशिपु के पक्ष में शरभ का रूप धारण कर पाशुपत चलाने वाले पशु पति के उस पाशुपत अस्त्र को निगल जाने वाले श्रीकृष्ण (नृसिंह) अर्जुन के साथ थे ही उसे पाशुपत की आवश्यकता ही क्या थी जो उसे पाने के लिए महादेवजी की तपस्या करते। अतः विष्णु भगवान् ही श्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ॥१५॥

प्रख्याताम्नायभाष्यादिषु हरिमिति वाक्यस्य विष्णुप्रकर्ष
व्याख्यानाद्ब्रह्मरुद्रादिकसुरहरणोदीरणात्तन्निरुक्तौ ।
आग्नेये तत्र पाद्मे शरभपरिभवाद्गारुडे नारसिंहे-
कौर्मे मात्स्ये पुराणे बहुमुखकथितात्पार्वतीप्रार्थितत्वात्॥१६॥

अर्थः- सुप्रसिद्ध विश्वासयोग्य वेद भाष्य, सहस्रनाम भाष्य आदि में ''हरि'' कथन (व्याख्यान) द्वारा भगवान् विष्णु के उत्कर्ष को कहा गया है, निरुक्त में ब्रह्मा, रुद्र इत्यादि देवताओंके हरणके कारण भगवान् को ''हरि'' कहा गया है। अग्नि पुराण, पद्मपुराण, नृसिंह पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण में सब जगह नृसिंह भगवान् के द्वारा शरभ रूपधारी महादेवजी का पराजय कहा गया है, भगवान् को प्रसन्न करने के लिए पार्वतीजी द्वारा उनकी स्तुति का वर्णन मिलता है अतः भगवान् श्रेष्ठ हैं तथा स्कन्द पुराणोक्त नृसिंह पराभव वर्णन अतथ्य एवं त्याज्य है ॥१६॥

शौरेरन्यत्र पाद्मे त्रिपुरहरशिरोनूपुरत्वाभिधाना-
द्वैकुण्ठादागतेनाथ च नरहरिणानेकहेमासुराणाम् ।

ध्वंसात्कालाखुदैत्यप्रथमनकथनात्स्वेच्छ्या चक्रपाणे-
र्भूयस्स्वस्थानयानादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।१७।।

अर्थः- नृसिंह सहस्रनाम एवं पद्मपुराण में भगवान् को 'हरशिरोनूपुर' (अर्थात् महादेवजी के सिर का आभूषण) कहा गया है । पाताल में रहने वालों की प्रार्थना पर नृसिंह भगवान् ने वैकुण्ठ से आकर पाताल वासियों को सताने वाले अनेक हेमासुरों का नाश किया, पुनः कालान्तर में कालमूषक नामक हिरण्य परिचारक के ब्रह्माण्ड नाश के लिए प्रयत्नशील होने पर ब्रह्मा की प्रार्थना पर उन्हीं नृसिंह भगवान् ने कालमूषक का वध किया यह मत्स्य पुराण में प्रसिद्ध है। साथ ही स्वेच्छा से प्रकट होने वाले चक्रपाणि भगवान् (नृसिंह) के स्वधाम पहुँचने के वर्णन से उनकी नित्यता सिद्ध होती है अतः वे ही श्रेष्ठ हैं शरभ रूपधारी शिव नहीं ।। १७ ।।

बाह्ये स्त्रीवेषवत्वे नटवदविजहन्मेहनत्वादनादेः-
पुंसो योनेरभावाद्धरगिरिसुतयोश्छिन्नलिङ्गत्वसिद्धेः ।
गौरीरूपावलोकस्खलितविधिभवद्वालखिल्यप्रधाव-
च्छास्तुश्चेशानरेतस्स्रु तिसहितपदांगुष्ठदेशोद्भवत्वात् ।।१८।।

अर्थः- भगवान् ने नट की तरह मोहिनीवेश धारण किया था, उन पुरुषोत्तम ने लिङ्ग परिवर्तन नहीं किया था वे योनि युक्त नहीं हुए थे, महादेव एवं भवानी जी छिन्न लिङ्ग हैं यह पहले ही कहा जा चुका है अतः हर-हरि समागम से सन्तान भ्रान्ति मात्र है। विवाह के समय गौरी रूप दर्शन से मोहित महादेवजी से विना योनि सम्बन्ध के बालखिल्य ऋषियों की उत्पत्ति कही गई है । उसी तरह भगवान् के मोहिनी वेश के दर्शन से अपने आपको भूलने वाले महादेवजी के अँगूठे पर इन्द्रिय का प्राकट्य हुआ- मोहिनी जी के आलिङ्गन से महादेवजी के सन्तान हुई यह सर्वथा मिथ्या प्रलाप मात्र है ।।१८।।

दुर्वार्ताशंसिवक्त्रोपमितविरचिताश्लेषकामार्यपाने-
शास्तुर्जन्मोपपत्तेरपि किल शतसाहस्रसत्संहितायाम् ।
भूतेशप्रार्थिताजप्रहितसुमहिताकारमायाकृतस्त्री-
वृत्तान्तस्याभिधानादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।१९।।

अर्थः- अप्रमाण छलोक्ति को कहने वाले मुख से उपमित विरचिताश्लेष कामारि के अपान में शास्ता का जन्म उपपन्न होने से तथा शतसाहस्र संहिता के प्रमाण से महादेवजी की प्रार्थना पर-अजन्मा भगवान् विष्णु के द्वारा निर्मित सुन्दर आकार वाली माया के द्वारा स्त्रीं वेश प्रकट किया गया-इस बात के सिद्ध होने से भगवान् विष्णु ही श्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ।।१३।।

काशीकेदारदिल्लीकटकबदरिकाद्वारकामुख्यदेशे
ष्वाख्याचिह्नाधिकत्वादितरजनपदेष्वच्युतस्य प्रसिद्धेः ।
बाहुल्यादेव शैवेष्वपटुकरणभृत्क्षुद्रकापालिकानां
लंकेशाद्येषु यद्वऽऽधुनिकनरकुलेश्रेयसामस्थिरत्वात् ।।२०।।

अर्थः- काशी, केदार, दिल्ली, कटक, बदरिकाश्रम, द्वारका मथुरा, काञ्ची, अयोध्यादि मुख्य देशों तथा इतर जनपदों में सर्वत्र भगवान् के नाम (माधव, मुकुन्द, मोहन, राम, रमेश, रंगनाथ चिह्न (शंख, चक्र, धनुष्य, बाण आदि प्रसिद्ध है । अपटु करणों (इन्द्रियों) को धारण करने वाले कापालिकों बीच रावणादि शैव जनों में महादेवजी के वर से प्राप्त सम्पत्तियों की अस्थिरता देखी जाती है (अतः भगवान् विष्णु ही श्रेष्ठ हैं) ।।२०।।

कूर्मादीनामनन्तावतारचयजुषां योनिजन्मोज्झितानां-
सत्वादद्यापि चाविर्भवननिगदनाद्योनिजानां न शापात् ।
तत्सत्वादेव शम्भोर्भृगुमुनिशपनव्यर्थभावाच्च यद्वा-
नानारूपावतारस्थितिषु विविधतत्तन्निमित्तोपलम्भात् ।।२१।।

अर्थः- भगवान् विष्णु के कच्छप वाराह आदि अनन्त अयोनिज अवतार हुये हैं और वे आज तक स्थित हैं उनका कहीं विनाश नहीं कहा गया है। योनिज जैसे प्रतीत होने वाले नरावतार भी योनिज नही हैं क्योंकि सर्वत्र उनका प्राकट्य अथवा आविर्भाव ही कहा गया है साधारण जनों की तरह जन्म नहीं कहा गया है। भगवान के आविर्भाव मे शाप इत्यादि कारण नहीं हैं देव तिर्यंक मनुष्यों में प्रकट होना-धर्म की लिए, भगवान् की लीला मात्र है, जबकि लिङ्गपुराण में भृगुमहर्षि के शाप से शम्भु के जन्म मरण आदि कहे गये हैं और शम्भु की विविध रूप से स्थिति में तत्तत् निमित्त प्राप्त होते हैं अतः विष्णु हीं श्रेष्ठ हैं ।।२१।।

विष्णोर्नानावतारस्थितिकथकपुराणेषु कामारिपूजा-
कृत्यस्यानुक्तभावात्तदितरकथितस्यास्य दत्तोत्तरत्वात्।
नानादेशप्रतीतक्षितिपतिनिजनामप्रतीष्ठोपपते-
मंत्स्येशादिप्रसिद्धोरपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।२२।।

अर्थ :- भगवान् विष्णु के नानावतारों को कहने वाले श्रीविष्णु पुराण तथा श्रीमद्भागवत आदि मे भगवान् के द्वारा कामारि (काम के शत्रु शिवजी) की पूजा नहीं कही गई है, इतर पुराणों तादृश वर्णन का उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। भगवानका नाम सर्वत्र राजरूप में-मत्स्येश-कच्छपेश-भुवनेश-रमेश इत्यादि रीति से प्रतिष्ठित हैं, भगवान् की स्तुति करने वाला स्वयं स्तुत्य हो जाता है, भगवान् को प्रणाम करने वाला स्वयं प्रशस्य हो जाता हैं ऐसे प्रमाणों से सिद्ध है कि पशुपति से विष्णु ही श्रेष्ट हैं ।।२२।।

श्रीकूर्माहीन्द्रदंष्ट्रयाकृतिधरभगवद्धारितक्ष्मातलाधो
देशस्थेशाङ्घ्र्यदृष्टेरनुचितकथनात्केतकीवीक्षितस्य ।
तन्मूर्ध्नस्तस्य पित्रा सरसिरुहरभुवा दर्शनासम्भवोक्ते-
रत्यन्तं हास्यभावादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।२३।।

अर्थः- महादेव इतने बड़े हैं कि भगवान् विष्णु को उनके सिर पैर का पता नहीं चला यह कथन हास्यापद है क्योंकि श्रीकूर्म शेष वराहरूप से भगवान् ही इस पृथ्वी (ब्रह्माण्ड) को धारण किये हुए हैं आधार रूप में सबके नीचे वे स्थित है 'हे देवि तुम उन वाराह के द्वारा उद्धृत हो जो सर्वज्ञ हैं' इस प्रमाण से सर्वज्ञ को 'शिव के सिर: पैर का पता नहीं' यह कथन अयुक्त ही सिद्ध होता है। केतकीके द्वारा दृष्ट शिवजी का सिर उनके पिता ब्रह्मा ने नहीं देखा हो यह नहीं कहा जा सकता और जो भगवान् विष्णु ब्रह्मा के बनाने वाले हैं वे किसी का सिर-पैर न जानते हों यह बात स्वयं वे सिर पैर की तथा हास्यास्पद है। 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः' से जिनकी सर्वज्ञता प्रसिद्ध है उनकी दर्शनाशक्ति कहना स्वयं क्षपनी हंसी कराना है। ब्रह्माण्ड पुराण में स्पष्ट कहा गया है कि सर्वशक्तिमान अच्युत भगवान् जगत् के एक मात्र स्वामी हैं, अन्य शक्तिमान ब्रह्म रुद्र आदि उन्हीं के अंश हैं। इससे सिद्ध है कि विष्णु ही श्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ।।२३।।

दुर्वासोद्रौणिवातात्मभवमयशुकैकादशाभिख्यरुद्रा
दीनां वेदे पुराणेष्वपि निगदनतो योनिजाऽयोनिजानाम् ।
नेशानेत्यादिवाक्यै र्निधनकथनतोप्यादिरुद्रस्य तेषां
शौरेस्सर्वाधिकत्वादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।२४।।

अर्थः- दुर्वासा, अश्वत्थामा, पवनपुत्र मयशुक प्रभृति ग्यारह रुद्रों का वेद में तथा पुराणों में भी योनिज अयोनिज के रूप में कथन हुआ है। साथ ही 'प्रलय में एकमात्र नारायण थे न ब्रह्मा थे, न ईशान (महादेव) थे और न ये पृथ्वी एवं आकाश थे' इत्यादि वाक्यों से आदि रुद्र तक का प्रलय कहा गया है, श्रीनारायण की सत्ता एवं महत्ता कही गई है, अतः श्रीविष्णु ही श्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ।।२४।।

पाद्मे लैङ्गे पुराणे यजुषि च निगमे भारते श्रीशुकोक्तौ-
काशीशब्रह्ममुख्यै रघुवरपरतत्व प्रकर्षाभिधानात् ।
तेषां जिह्वानिरोधेप्यसति मुनिभुजस्तम्भनायोग्यभावात्-
श्रीशख्यातिध्वजत्वादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।२५।।

अर्थ :- श्रीपद्मपुराण, लिङ्गपुराण, यजुर्वेद, महाभारत, भागवत आदि में, ब्रह्मा एवं काशी विश्वनाथ जैसे मुख्य देवताओं के द्वारा राघवेन्द्र सरकार श्रीराम सर्वोत्कृष्ट परम तत्व कहे गये हैं। उनकी जिह्वा का अवरोध होने पर पराशरनन्दन श्रीव्यासजी का बाहुप्रति (ष्टम्भहाथ रुकना) कैसे सम्भव हो सकता है क्योंकि उनका हाथ तो श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान् के कीर्तिध्वज के रूप में प्रसिद्ध है अतः भगवान् विष्णु ही श्रेष्ठ हैं पशुपति नहीं ।।२५।।

भूम्याद्यं शाश्रितत्वात्स्वरथमुखसमित्साधनानाञ्च तेषां-
विष्णोर्नैसर्गिकत्वात्क्षितिभरणविधेर्वाहनत्वाद्ययोगात् ।
साक्षात्स्वाङ्के सुमित्रातनुभववहनान्नीलकण्ठावतार
प्रख्यातेर्वातसूनोरपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।२६।।

अर्थ :- त्रिपुर के विनाश के समय महादेवजी ने जिन भूमि, सूर्य चंद्र, वासुकी आदि को रथ प्रभृति मुख्य युद्ध साधनों के रूप में प्रयुक्त किया वे ब्रह्माण्ड का भरण पोषण करने वाले नारायण के स्वाभाविक अंश हैं, उन अंशों की अपेक्षा महादेवजी को तो है, पर नारायण के लिये अपने धारक के रूप में इनकी कभी अपेक्षा नहीं है। नीलकण्ठ महादेव के अवतार रूप में प्रसिद्ध श्री हनुमानजी नारायण (रामजी) के छोटे भाई सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी को अपनी गोद में धारण करते हैं- इस प्रकार उनकी सेवा करने से पशुपति की अपेक्षा उनके स्वामी श्रीविष्णु ही श्रेष्ठ हैं ।।२६।।

अब्रह्मण्याशुचित्वादनवरतमपि ब्रह्मशीर्षास्थियोगा-
त्स्प्रष्टुं स्वस्य प्रयातुं न समुचिततयानित्यदा हेयभावात् ।
दक्षादिब्रह्महत्यामयविपुलकपालावृतग्रीवभावा-
त्तद्भूषानित्ययोगादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।२७।।

अर्थ : - निरन्तर अमङ्गलरूप अपवित्र ब्रह्मकपाल एवं श्मशान के संबंध से हेयभाब के कारण, स्पर्श तथा समीप गमन के भी जो योग्य नही हैं, दक्षादि ब्रह्महत्यामय कपाल (नरमुण्ड) को आभूषण के रूप में जो सदा धारण करते हैं उन पशुपति से श्रीविष्णु ही श्रेष्ठ हैं ।।२७।।

शम्भोर्ज्ञानप्रदत्वेपि च शुकवपुषा तामसत्वस्वभावा-
च्छुद्धज्ञानाप्रदानाद्रघुवरमनुदानेपि काशीश्वरस्य ।
स्वाहन्तागर्भितत्वात्स्वपदगतिविलम्बेन सद्यो
मुमुक्षो रप्रार्थ्यत्वाद्रवीन्दूपमितनिजजनस्थानदानाधिकारात् ।।२८।।

अर्थः- शुक शरीर से शम्भु के ज्ञानप्रद होते हुए भी काशी में राममन्त्र को ही विश्वनाथ देते हैं। रजोगुण और तमोगुण से रहित मुक्ति का कारण शुद्ध ज्ञान अपने तामस स्वभाव के कारण वे नहीं दे पाते, राम मन्त्र से जीव को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है तब उसकी मुक्ति होती है, अहंकार युक्त होने से स्वपद प्राप्ति रूप मुक्ति में विलंब के कारण सद्यः मुक्ति चाहने वाले के लिए शिव प्रार्थना करने योग्य नहीं हैं । सर्व साक्षिक सूर्यचन्द्रोपमित अकालकृत अपने धामके देने से (भगवान् विष्णु ही श्रेष्ट हैं पशुपति नहीं ।) ।।२८।।

मोक्षापेक्षान्वितानामपि च यतिपतेर्दिव्यनारायणख्या
सम्पत्तेरेव लोके स्थिरपरमपदप्रापकत्वप्रसिद्धेः ।
स्वाकर्तुत्वेन मुक्तेर्गिरिशनिगदितात्केशवयस्यैव-
साक्षान्मोक्षप्रदत्वादपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।२९।।

अर्थः- संसार में मोक्ष की अपेक्षा रखने वाले सभी लोगोंके लिए हमारे आचार्य यतिराज भगवान् श्रीरामानुजाचार्य के मत में दिव्य नारायण नाम संकीर्तन ही परमपद (मोक्ष) को देने वाला है। हजारों प्रमाणों से सिद्ध है कि मुक्ति देने वाले शिवजी नहीं हैं, स्वयं शिवजी के कथनानुसार केशव भगवान् ही साक्षात् मोक्ष देने वाले हैं अतः रे भगवान् विष्णु ही श्रेष्ठ है पशुपति नहीं ।। २९ ।।

प्रालेयाद्रीन्द्रकन्यावयवबिलसनाद्योनिपीठस्य पुंस-
स्ताद्रू प्यायोग्यभावादपि च पृथगवस्थानयोग्यत्वसिद्धेः ।
नित्यं वैशिष्ट्यरूपाद्वैतमतवचनायुक्तभवाद्विशिष्टा-
द्वैतस्य स्वाङ्गलिंगाविरतयुततया चक्रिणो युक्त्ययुक्तेः ।।३०।।

अर्थः- लिङ्गपुराण के अनुसार पार्वत्यवयव ही योनिपीठ हैं, शिव पार्वती के पति हैं, परमात्मा नाम से प्रसिद्ध पुरुषोत्तम अन्य ही हैं. योनिपीठ से पुरुषोत्तम की तद्रूपता सिद्ध नहीं की जा सकती क्योंकि वहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली पृथक् स्थिति ही सिद्ध है। नित्य विशिष्ट रूप से रहने वालेका अद्वय भाव कहना अयुक्त ही है। विशिष्ट शिलष्ट शिव के अङ्गभूत चिन्ह से अनवरत युक्त रूप में चक्री वासुदेव का चित्रण युक्ति हीन है (अतः विष्णु ही श्रेष्ट हैं) ।।३०।।

यद्वा स्वांगार्धदानाद्धिमगिरिदुहितुः केशवस्याविशेष
स्वांगार्धस्य प्रदानान्मनसिजविमतस्याशरीरत्वसिद्धेः ।
वैशिष्ट्यस्याप्रसंगाद्भवत उभयतश्चिद्विवर्तापिवर्गा-
युक्तत्वादेवशक्तेरपि न पशुपतिर्विष्णुरेव प्रकृष्टः ।।३१।।

अर्थः- पार्वती जी के लिए अपने शरीर का अर्धभाग महादेवजी ने दिया, हरिहरनाथ अवतार में अवशिष्ट आधा भाग उन्होंने केशव भगवान् के लिए दिया, इस प्रकार कामारि सर्वथा अशरीरी हो गये -

शरीर हीन किसी के साथ किसी भी प्रकार का वैशिष्ट्य कहा ही नहीं जा सकता। तुम्हारे मन में दोनों ही तरह नित्य शक्ति के चित्स्वरूप तथा अपवर्ग से असम्बद्ध कारण पशुपति को नहीं कहा जा सकता श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं ।।३१ ।।

अन्त में इस प्रकार, सभा विपक्षी मौन हो गये और श्रीमहापूर्ण स्वामीजी ने श्रीकूरेश स्वामीजी के विजय उद्घोष जिसे सुनकर उस समय अपने मंत्रियों सहित चोल नरेश खिन्न हो गये।

।। इति व्याख्यान कूरेशविजयः समाप्तः ।।

श्रीमते रामानुजाय नम:

भजन

श्रीकूरेश स्वामी के गुणों को चिन्तवन मनरे ।। टेक।।
चलें श्रीरंग को स्वामी, चलीं आण्डाल अम्माजी ।
हरि दर्शन के खातिर में, लुटाये हैं, सभी धन रे ।।१।।
वहां श्रीरंग में रहकर, उठाये ऊंछ वृत्ती को ।
श्रीयतिराज अनुभव में, बिताये हैं, सभी दिन रे ।।२।।
चतुर्गामास्य जो वासी, किया अपचार बहु इनका ।
सभी अपराध को भुलकर, पठाये हैं परमपद रे ।।३।।
न भक्ति न विरक्ती है, सियाराम दास की शक्ती ।
भरोसा एक चरणों का, वही है दास को धन रे ।।४।।

श्रीरामानुज स्वामीजी के शिष्यों में परिपूर्ण आत्मगुणसंपन्न शिष्य श्रीकूरेश स्वामीजी को

मोळियैक्कडक्कुम् पेरुम्पुहळान * वञ्जमुक्कुरुम्बाम्
कुळियैक्कडक्कुम् नम् कूरत्ताळ्वान् शरण्कूडियपिन्
पळियैक्कडत्तुमिरामानुजन् पुहळ्पाडि अल्ला
वळियैक्कडत्तल् * एनक्किनि यादुम् वरुत्तमन्रे ।।७।।

श्रीरामानुज नूत्तन्दादि पाशुर - ७

वाचामगोचर महायशवाले एवं कुलमद-धनमद-विद्यामद नामक तीन प्रकार के मदरूपी गड्ढों का पार करनेवाले, हमारे नाथ श्रीकूरेश स्वामीजी के श्री पादों का आश्रय लेने का बाद, सर्वपापनिवर्तक श्री रामानुजस्वामीजी के दिव्य यशोगान करके, स्वरूपविरुद्ध (नरकादि) दुष्ट मार्गो से बचना अब मेरे लिए बिलकुल कठिन नहीं।

श्री कूरेश स्वामीजी से अपना संबंध सोच कर, अब प्रसन्न व निर्भय होते हैं। श्रीरामानुज स्वामीजी के शिष्यों में आत्मगुणसंपन्न अनेक महात्मा अवश्य ही विराजमान थे। तथापि उनके बीच में श्रीकूरेशस्वामीजी शमदमक्षान्त्यादि कल्याणगुण परिपूर्ण होकर सबसे उच्चतम माने जाते थे। उनके जीवनचरित्र में इस विषय के अनेक दृष्टांत मिलते हैं। अत: उनका वर्णन करनेवाले आचार्यलोग केवल इतना ही कहते है कि ''वाचामगोचरमहागुण कूरनाथ'' इसका तात्पर्य यह है कि कोई भी विद्वान श्रीकूरेशस्वामीजी के शुभगुणों का ठीक ठीक वर्णन नहीं कर सकता। अत: अब अमुदनार यों कहते हैं कि, ऐसे महामहिम श्रीकूरेश स्वामीजी का कृपापात्र बनने के बाद अब मुझे श्रीरामानुजस्वामीजी का यशोगान करके सद्गति पाना सर्वया कठिन नहीं; परंतु सुलभ हैं।...